ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 88-89

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

लोक चित्रकला लोक जीवन से दूर

डॉ0 गुलाबधर

सहायक आचार्य– चित्रकला विभाग, जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ0प्र0), भारत

Received-16.04.2023, Revised-21.04.2023, Accepted-26.04.2023 **E-mail: gulabdharjrhu@gmail.com**

सारांशः ***लोक चित्रकला लोक जीवन की ही देन होती है। यह लोक जीवन में अद्भूत होती है। लोक जीवन में ही परम्परा के विकास क्रम होते हैं। हमारे गाँव की सामाजिक संस्कृति में यह जीवन की संवेदनाओं से उपजती है और हमारी परम्पराओं से जुड़ती चली जाती है। सामाजिक जीवन के संस्कारों, गाँव के आन्तरिक जीवन दर्शन और आदर्श मूल्यों को प्रभाव भी प्रत्यक्ष रूप से लोक कलाओं में होता है। चक्षुष कलायें तो अनेक अनुष्ठानों से जुड़ी होती है। इस तरह यह गाँवों के स्वाभाविक जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष होती है। गाँव की संस्कृति और परम्पराओं की भी अपनी एक गति होती है। मगर यह नगरों की संस्कृति से भिन्न होती है। इसलिए कि नगरों व महानगरों के सामाजिक जीवन की गति कहीं तेज, कहीं बहुत तेज व कहीं भारी होती है। यहाँके मूल्य एवं मान्यतायें बहुत तेजी से बदलते हैं। यहाँ भौतिकता का एक आतंक होता है। यहाँ जिसकी दहशत में ज्यादातर लोग बदहवास होते हैं। इन सबका प्रभाव नगर कलाओं पर भी है। दूसरी ओर गाँव की कला अर्थात् लोक जीवन की कला जिसका उद्भव समग्र लोक जीवन से होता है। इसकी एक स्पष्ट पहचान होती है। जबकि नगर कलाओं में हर किसी के सृजन में एक व्यक्तिवाद होता है। यह लोक समग्र की भाषा नहीं अख्तियार कर पाती है।***

कुंजीभूत शब्द– लोक चित्रकला, लोक जीवन, परम्परा, विकास क्रम, सामाजिक संस्कृति, सामाजिक जीवन, संस्कारों, व्यक्तिवाद।

देश में कुछ ऐसी चित्रकला है जो लगभग 400 वर्षों की अपनी परम्परा है। मधुबनी लोक कला, कुमायूँ लोक चित्रकला, राजस्थानी लोककला, बॉकुड़ा की लोक चित्रकला, राजस्थान के भोपा कथा, वाचकों की लोक चित्रकला, सांझी लोक चित्रकला आदि का अध्ययन करने पर इस बात का स्पष्ट यह एहसास होता है कि देशकाल की परिस्थितियों के तेज बदलाव के कारण हमारे गाँव की संस्कृति भी अक्षुण नहीं रह सकी। खासकर बाजारवादी विरूपताओं में यहाँ की लोक चित्रकला की गहराई प्रभावित किया।

आदिम चित्रकला में हम मनुष्य के अचेतन की जिस शक्ति का एहसास करते हैं। यह इनकी स्वयं स्फूती रेखाओं में है। आदिम चित्रकला के धूमिल पड़े अवशेष प्रायः पर्वत की कंदराओं में है। परन्तु हजारों वर्षों बाद भी कहीं कहीं तो वनस्पति रंगों की ताजगी लिए हुए भी है। 50 हजार वर्षों से भी अधिक मध्य प्रदेश के भीम बैठका और झारखण्ड के हजारीबाग के पहाड़ियों में स्थित कंदरायें इस आदिम चित्रकला के साक्ष्य है। निश्चय ही हमें ये किसी आदिम शक्ति का अनुभव कराते हैं।

इनके प्रभाव हमें संवेदित ही नहीं करते, उद्वेलित भी करते हैं। आदिम चित्रकला के बाद आदिवासी या जनजातीय चित्रकला अनगढ़ रूपाकारों में भी एक सृजित जो हमें अपने प्रभाव में समेट लेती है। दरअसल मनुष्य की चेतना के विकास क्रम में ग्राम्य जीवन की लोक चित्रकला सुनियोजित और प्रायोजित आग्रह है। यह किसी प्रतीक या बिम्ब की तरह चित्रांकित नहीं हुई है। इनमें कथा है, इनमें प्रायोजन है, इनमें आस्था है। सामान्तः राजस्थान के भोपा कथा, वाचकों की लोक चित्रकला में भी राजा सल्हेस और राय रणपाल की कथा पट के चित्र बनाकर उनकी कथा गाते हुए चित्रों के प्रदर्शन की परम्परा रही है। इन परम्पराओं से अलग भी मिथिला की बधुबनी लोक चित्रकला, कृष्ण कथा के साथ ही कुछ लोक महागाथाओं के चित्रांकन होते रहे हैं। मगर अब सबने परिवर्तन की राह पकड़ ली है। मिथिला में जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न संस्कारों के समय किये जाने वाले चित्रांकन का प्रायः लोक जीवन में पलायन हो गया है।

यह शैली भारतीय जनमानस के ऑगन में पुष्पित और पल्लवित होती कला है। लोक शैली इतिहास और अपनी ख्याति की अपेक्षा किये बिना हमारे परिवर्तन सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन की परम्पराओं के साथ सम्बद्ध होकर आगे बढ़ रही है। इसे किसी के अवलम्बन आश्रय, प्रोत्साहन और प्रलोभन की आवश्यकता नहीं होती है। लोककला के चित्र के रंग के लिए दैनिक आवश्यकता की सामग्री का उपयोग किया जाता है। भारत की प्रमुख लोककला रंगोली महाराष्ट्र, साजिया गुजरात, गोदना बिहार, आपहन–बिहार, मानडन राजस्थान, सोन रखना या चौक पूरना उत्तर प्रदेश, अपना पहाड़ी, मेंहदी राजस्थान यह सभी लोक कला में भारतीय जनमानस के ऑगन में पुष्पित हुई।

बुन्देलखण्ड का नव सृजित जिला चित्रकूट पहले बाँदा का एक भाग था अब चित्रकूट का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। यहाँ मंदाकिनी का जल, वन–पर्वत, छोटे–बड़े झरने, नाले–नदियाँ चित्रकूट की शोभा है। चित्रकूट के पठारी भाग में वनवासी कोल हैं। यहाँ एक कहावत भी है–एक ने पठारी भाग वाले से पूछा भाई कहाँ रहते हो? गरीब का उत्तर झील, झाखर, झौ, ज्वार, चना, जौ तीन, पांच नौ अपना अपना गौ (जहाँ झील, झरने झाण्डियाँ, बड़ी–बड़ी गुफायें आदि हैं) खाते क्या हो? ज्वार, चना, जौ खाकर जीते हैं। जीने का और आधार क्या है? तीन लेते हैं पाँच लिखते हैं।

नौ वसूलते है फिर भी वहाँ क्यों रहते हो? अपना–अपना गौ भइया क्या करें? ऋषि संस्कृति के वाहक आज भी ऐसी ही परिस्थिति के ज्यादातर शिकार हैं। इसके विपरीत प्रकृति की सुषमा अभी भी शेष हैं। इसलिए तो दशरथ नन्दन अयोध्या के लोक नायक राम ने अपने वनवास काल में यहाँ 11 वर्ष तक रहे। संत श्री तुलसी दास ने रामचरित मानस की रचना करके राम को घर–घर पहुँचाया। आज राम मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान के रूप में पूजित है। चित्रकूट के आदिवासी कोलों का अपना पुराना गढ़ है। वे यहाँ के काल पुरूष है। दुर्भाग्य से इतिहास में इस समूह की ओर दृष्टिपात नहीं किया। आज भी हजारों साल पुराने शैल चित्र यहाँ विद्यमान है। लगभग

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

60 हजार आबादी वाले कोल समूह का अपना एक वैभवशाली इतिहास है। भले ही तथा कथित सुसभ्य समाज ने इनको दुर्लभ किया है। किन्तु जिन लोककला विधाओं को लेकर आज वे भी रहे हैं वह पूँजी अन्यत्र दुर्लभ हैं।

लोककला ह्रदय का धन है। इसकी आकृतियाँ सुन्दर नहीं होती है। बल्कि इसमें छिपे भाव अत्यन्त सुन्दर होते हैं जो विश्वासों, अन्ध विश्वासों तथा रक्षा का साधन होते हैं। ये जीवन को अलंकरित करते हैं। लोककला को वर्तमान कला में सम्मिलित कर लिया गया है। परिणामतः कुछ भारतीय कलाकारों ने लोककला के आधार पर अपनी कला की रचना की है, आमिनी राय, अमृता शेरगिल, सतीश चन्द्र गुजराल पर बहुत ज्यादा कला का भी प्रभाव पड़ा है। लोककला नवीन रूपों में उद्भावना द्वारा विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करती है। ये कलायें हमारे जीवन को सुखी एवं समृद्ध बनाती है। इसलिए इनका प्रयोग आवश्यक माना गया है। ये कलायें हस्तांरित होती है। इसलिए इनको अपनाने से इंकार नहीं किया जा सकता है। इसलिए लोककला का प्रशिक्षण देना आवश्यक है जिससे इस कला से छात्र व कलाकारों को उनके जीवन में चित्रकला के प्रति लगाव व अनेक अस्तित्वहीन हो रहे परम्पराओं को बचाया जा सके और वे इस कला से लाभान्वित हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ए0एल0 श्रीवास्तव, भारतीय कला प्रतीक, पृष्ठ 22–30.
2. क्रान्ति चन्द्र पाण्डेय, स्वतंत्र कला शास्त्र, पृष्ठ 68–69.
3. अशोक, कला सौन्दर्य और समीक्षा शास्त्र, पृष्ठ 161–165.
4. डॉ0 ममता चतुर्वेदी, सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ 164–165.
5. डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल, अशोक कला निबन्ध, पृष्ठ 186–187.
6. गोपाल भाई, लोक लय पत्रिका, पृष्ठ 82.
7. कला दीर्घा, अप्रैल 2008, अंक–16.
8. प्रो0 रामचन्द्र शुक्ल, आधुनिक चित्रकला, पृष्ठ 59–60.

*****